ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 134-137

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता में पर्यावरण चेतना

डॉ0 मनोज कुमार स्वामी

सहायक प्राध्यापक– हिन्दी विभाग, रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, होजा, (असम) भारत

Received-07.06.2022, Revised-11.06.2022, Accepted-16.06.2022 E-mail: imanojkswami@gmail.com

सारांशः – *साहित्य और मानव का रिश्ता आदिम काल से अटूट रहा है। यही कारण है कि साहित्य में मानव जीवन के सरोकारों की अभिव्यक्ति होती रही है। आज पर्यावरण मानवीय जीवन के सरोकारों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। पर्यावरण संरक्षण के प्रति पूरा विश्व चिन्तित है, क्योंकि मानव जीवन की डोर इसके साथ बंधी है। प्रकृति मानव जीवन का अभिन्न अंग है और प्रकृति के साहचर्य में ही मानव का विकास संभव है। प्रकृति और पर्यावरण के बगैर मानव–जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आज पूरी मानवता पर्यावरण के प्रति संवेदनशील होने का प्रयत्न कर रही है। इसलिए विश्व साहित्य में पर्यावरण की चिंता विविध रूपों में उभर कर सामने आ रही है। ऐसी स्थिति में हिन्दी साहित्य और विशेषकर इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता इससे निर्लिप्त कैसे रह सकती है। इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता में पर्यावरण के प्रति कवियों की संवेदनशीलता और पर्यावरण को बचाने की उनकी बैचेनी अवलोकित होती है। इन कवियों ने पर्यावरण के प्रति सजगता को किस प्रकार अपनी कविता के माध्यम से अभिव्यक्त किया है? इसको दिखाने का विनम्र प्रयास प्रस्तुत शोध आलेख में किया गया है।*

कुंजीभूत शब्द– आदिम काल, अभिव्यक्ति, पर्यावरण, मानवीय जीवन, पर्यावरण संरक्षण, संवेदनशीलता, विकार उत्पन्न।

पर्यावरण संपूर्ण सृष्टि को अपने में समाहित करने वाली एक व्यापक अवधारणा है। पर्यावरण 'परि' एवं 'आवरण' इन दो शब्दों से मिलकर बना है। 'परी' का अर्थ है – चारों ओर तथा 'आवरण' का अर्थ है – घेरा। इस प्रकार पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ है – चारों ओर का घेरा या कवच। अंग्रेजी में पर्यावरण के लिए 'Environment' शब्द का प्रयोग होता है जिसका अर्थ है आसपास का वातावरण। इस प्रकार प्राकृतिक तत्व जो हमें चारों ओर से घेरे रहते हैं और जीवन के प्रत्येक पहलू को कम या अधिक रूप में प्रभावित करते हैं वह पर्यावरण कहलाता है। बृहद हिंदी शब्दकोश के अनुसार, "पर्यावरण चारों ओर के संपूर्ण जड़ और चेतन पदार्थों का सम्मिलित नाम है।"[1] इसमें आकाश, पृथ्वी, वायु, जल, पशु–पक्षी, वन, वनस्पति आदि सबकुछ सम्मिलित है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि आप जिसको देखते हैं या महसूस करते हैं वह हमारा पर्यावरण है। पर्यावरण और मानव में इतना गहरा संबंध है कि दोनों परस्पर एक दूसरे को प्रभावित किए बिना नहीं रह सकते। प्रकृति के इन तत्वों में से किसी में भी विकार उत्पन्न होता है तो पृथ्वी पर जीवन के प्रति संकट की आहट सुनाई पड़ती है। प्राकृतिक तत्वों में उत्पन्न यही विकार पर्यावरण प्रदूषण कहलाता है।

इक्कीसवीं सदी का आगमन भूमंडलीकरण, उदारीकरण, बाजारवाद, संचार के नवीन साधनों एवं सामाजिक संचार तंत्र के साथ हुआ। नगरीकरण व औद्योगिकरण के विकास तथा भौतिकवादी सभ्यता के उत्थान ने सबसे अधिक क्षति हमारे पर्यावरण को ही पहुँचाई है। जल, थल, वायु, आकाश आदि सभी प्राकृतिक कारक प्रदूषण की चपेट में है। प्रकृति के अनियंत्रित दोहन के परिणामस्वरूप पर्यावरण की स्थिति और भी विकृत हो गई। आज संपूर्ण विश्व जिस समस्या से सबसे अधिक चिंतित है वह पर्यावरण प्रदूषण है। इक्कीसवीं सदी के हिंदी कवि पर्यावरण की इस दुर्दशा को सहन नहीं कर सके। अतः उन्होंने अपनी कविता के माध्यम से प्रकृति को दूषित करने वाले सभी कारकों के विरुद्ध खड़े होने तथा पर्यावरण के संदर्भ में आधुनिक चेतना जागृत करने में सक्रिय भूमिका निभाने का बीड़ा उठाया।

पर्यावरण चेतना के तत्व भारतीय साहित्य परंपरा में आरंभ से दिखाई पड़ते हैं, इक्कीसवीं सदी की कविता में पर्यावरणीय चेतना का स्वरूप थोड़ा अलग है। वर्तमान कविता पर्यावरण के विकृत स्वरूप का चिंतन और उसके संरक्षण के प्रति चेतना की अभिव्यक्ति करती है, जो इसके पहले की कविताओं में देखने को नहीं मिलती है। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में मनुष्य ने स्वार्थपूर्ण भौतिकवादी जीवन शैली को आत्मसात् किया। उसने प्रकृति को महज उपभोग की वस्तु समझकर उसका मनचाहा दोहन किया। औद्योगिक इकाइयों का पर्याप्त मात्रा में निर्माण हुआ। असंख्य चिमनियाँ वातावरण में जहर घोलने लगीं। वृक्षों को काटकर सड़कों और रेल की पटरियों का जाल बिछाया गया। नदियों के मार्ग को बाधित कर बांधों का निर्माण किया जाने लगा। इसके परिणामस्वरूप जैव विविधता नष्ट होने लगी। पर्यावरण के विभिन्न घटकों में होने वाली वि.ति और जन समुदाय के स्वास्थ्य पर दूषित पर्यावरण के प्रभाव को देखकर कवि विजय राठौर चिंतित हैं। वे अपनी कविता के माध्यम से मनुष्य को सजग करते हैं कि यदि अपने भविष्य को सँवारना है तो पर्यावरण के संरक्षण के लिए आगे आना होगा –

"अगर हमें नहीं बनना है पुरावशेष तो बचाएँ जल को वृक्षों को बढ़ायें आइए सृष्टि की सुरक्षा के लिए जनसंख्या

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

को घटाएँ।"[2]

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में देखते–ही–देखते चारों ओर अनेक औद्योगिक इकाइयों की स्थापना होने लगी। औद्योगिकरण ही विकास का मानदंड बन गया। विभिन्न राष्ट्रों के बीच उत्पाद को बेचने और स्वयं को शक्तिशाली दिखाने की प्रतिस्पर्धा आरंभ हुई। स्वयं को अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए आणविक अस्त्रों का परीक्षण प्रारंभ हुआ। मानव ने परमाणु के आधुनिकतम संस्करण तैयार कर लिए। इन आणविक अस्त्रों के परीक्षण से पर्यावरण में विकार उत्पन्न हुआ है और इनके प्रयोग से तो पृथ्वी पर जीवन संभावना ही खत्म हो जाएगी। इसी आशंका को व्यक्त करते हुए कवि नरेश सक्सेना लिखते हैं – **"हम तो होंगे नहीं पता नहीं पृथ्वी पर जीवन भी होगा या नहीं शायद आणविक राख से सनी ईंटें ही कहेगी कथा और ईंटें ही सुनेंगी।"[3]**

क्षण भर में जीवन को स्वाहा कर देने वाले अस्त्र–शस्त्र समस्त मानव जाति के लिए खतरा है। ताकतवर राष्ट्र अपने आणविक अस्त्रों को अपने शक्तिपुंज के रूप में देखते हैं। अस्त्रों की घातकता से वाकिफ होते हुए भी वे इन्हें नष्ट करने के स्थान पर निरंतर इनमें वृद्धि का प्रयास करते हैं। इन परिस्थितियों से व्यथित होकर अपने मन की पीड़ा को व्यक्त करते हुए कवि सुधीर रंजन भावुक होकर लिखते हैं –

"दुनिया को नष्ट करने के लिए जो कुछ बनाया जाता है, काश वह भी सिर्फ देखने के लिए बना होता।"[4]

मनुष्य अपने को शक्तिशाली बनाने के लिए प्रकृति पर विजय प्राप्त कर लेना चाहता है। अपने लोभी स्वभाव के कारण वह धरती, आकाश, नदी, पहाड़, वन आदि सारे संसाधनों को अपनी मुट्ठी में जकड़ लेना चाहता है। अपने जीवन को साधन सम्पन्न बनाने के लिए वह प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर रहा है। इक्कीसवीं सदी के कवयित्री लीना मल्होत्रा राव अपनी कविता के माध्यम से मानव को सचेत करते हुए इसके घातक परिणाम की ओर संकेत करती हैं –

"पेड़ काट डालूँ समंदर माप डालूँ और चिड़िया को मार भूनकर खा जाऊँ फिर समाधि भी मेरी पहाड़ भी मेरा पंख भी आकाश भी साथ देने को पेड़ तक न मिला पक्षी की चहचहाट तक न थी मर्सिया पढ़ती पहाड़ उसकी मुट्ठियों में दबे दम तोड़ गये निविड़ एकान्त बनकर मरा वह अकेला आदमी।"[5]

पूँजी के स्वामीत्व वाले अंधविकासवाद ने प्रकृति और पर्यावरण की जो दशा की है, उससे सम्पूर्ण मानवता को भयावह खतरा उत्पन्न हुआ है। प्रकृति मनुष्य की जरूरतों को पूरा कर सकती है, उसके लालच को नहीं। प्राकृतिक संसाधन सीमित मात्रा में ही उपलब्ध है। अगर मनुष्य अब भी सचेत नहीं हुआ तो वह दिन दूर नहीं जब सारे गोचर–अगोचर प्राणी खत्म पो जाएंगे। भूमंडलीकृत नव–साम्राज्यवादी समय का भयावह और कुरूप सच नरेश सक्सेना की इन पंक्तियों में स्पष्ट देखा जा सकता है – **"नक्शे में जंगल हैं पेड़ नहीं नक्शे में नदियाँ हैं पानी नहीं नक्शे में पहाड़ हैं पत्थर नहीं नक्शे में देश हैं लोग नहीं समझ ही गए होंगे आप कि हम सब एक नक्शे में रहते हैं.... तफ़रीह की जगह नहीं है यह नक्शों से फ़ौरन बाहर निकल आइए**
मुझे लगता है एक दिन सारे नक्शों को मोड़कर जेब में रख लेगा कोई मसख़रा और चलता बनेगा।"[6]

वृक्ष प्रकृति की अनुपम देन है। ऑक्सीजन व कार्बन–डाइ–ऑक्साइड के सन्तुलन में वृक्ष की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, परन्तु विकास के नाम पर रोज असंख्य वृक्षों को काटा जा रहा है। वृक्षों को काटकर ऊँची–ऊँची इमारतों, सड़कों और उद्योगों का निर्माण किया जा रहा है। वृक्ष को काटने का उद्देश्य चाहे जो भी हो वह पर्यावरण के लिए नुकसानदेह होता है। लगातार कटते वृक्षों को देखकर वर्तमान कवि चिन्तित है। नरेश सक्सेना तो किसी भी तरह वृक्ष को बचाये रखने की इच्छा प्रकट करते हुए कहते हैं –

"लिखता हूँ अंतिम इच्छाओं में
कि बिजली के दाहघर में हो मेरा संस्कार
ताकि मेरे बाद
एक बेटे और एक बेटी के साथ
एक वृक्ष भी बचा रहे संसार में।"[7]

मनुष्य के जीवन यापन लिए अत्यावश्यक सामग्री उपलब्ध कराने में वृक्ष की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, पर आज विकास के नाम पर जीवन के वाहक वृक्षों को लगातार काटा जा रहा है। वृक्षों के कटने पर वायु की शुद्धता में निरंतर कमी आ रही है और कटे हुए वृक्षों को जलाने पर उनसे निकलने वाला धूआँ वायु को और अधिक प्रदूषित करता है। पर्यावरण के प्रति मानव का यह व्यवहार मानव को ही मृत्यु की ओर ढकेल रहा है। बावजूद इसके मनुष्य अपने शतायु होने की कामना करता है। भावी पीढ़ी के प्रति अपने उत्तरदायित्व से वह पूर्ण रूप से विमुख हो गया है। इक्कीसवीं सदी का कवि मनुष्य को

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

भविष्य के प्रति सचेत करने के साथ–साथ उसके कर्त्तव्य का भी बोध कराता है। यथा –

"बढ़ते मनुष्य और घटते पेडों की चिंता
पेड़ कर ही नहीं सकते
और मनुष्य करना ही नहीं चाहते
किसी प्रकार की चिंता
जल्दी मरने को सारी प्रक्रिया पूरी करके भी
मनुष्य मरना नहीं चाहता बहुत जल्दी
हालांकि वह सब कुछ कर रह है
अपनी साँसों के विरुद्ध।"[8]

जल प्रदूषण वर्तमान समय की सबसे बड़ी समस्या है। स्वयंसेवी संगठन, धर्मगुरू और जनसाधारण समय–समय पर जनजागरण के विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा जल प्रदूषण को रोकने का प्रयास कर रहे हैं। जब सामाजिक और धार्मिक स्तर पर जल प्रदूषण के लिए चिंतन जारी है तो कविता में इस समस्या के प्रति चिंतन स्वाभाविक है। इक्कीसवीं सदी की अनेक हिन्दी कविताओं में जल संरक्षण की चेतना दृष्टिगोचर होती है। नदियों के प्रति श्रद्धा का भाव प्राचीन काल से भारतीय संस्कृति की विशिष्टता रही है। ऐसी विशिष्ट संस्कृति के वाहक देश में नदियाँ इस कदर दूषित हो जाएंगी, इसकी किसी ने कल्पना भी नहीं की होगी, पर मनुष्य ने अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए नदियों को विकृत करने में जरा भी संकोच नहीं किया। नदियों की यही पीड़ा प्रेमशंकर रघुवंशी की कविता में अभिव्यक्त हो रही है –

"सूखते जा रहे हैं झरने
और उजड़ते जा रहे हैं पहाड़
उजाड़ पहाड़ों को देखती रात–दिन
विलाप में लीन है नदी
तिस पर चाहे जो चाहे जहाँ
रोक लेता है उसे
तो ठीक से चल फिर भी नहीं पाती नदी।"[9]

आज प्रकृति का विनाश कर मनुष्य विकास के पथ पर लगातार आगे बढ़ता जा रहा है, पर आज नहीं तो कल विकास का यह मॉडल मनुष्य के अस्तित्व को ही लील जाएगा। यह किसी से छुपा हुआ नहीं है कि विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का नीति और नियमों को ताक पर रखकर दोहन किया जा रहा है। बड़ी–बड़ी परियोजनाओं के बहाने अनियंत्रित रूप से जल, जंगल और जमीन को हड़पा जा रहा है। प्रकृति की संरचना के साथ छेड़छाड़ की जा रही है। इससे प्रकृति और पर्यावरण की क्षति के साथ–साथ मानव का भविष्य भी अंधकारमय होता जा रहा है। इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कवयित्री ग्रेस कुजूर अपनी कविता में सूखती नदियों, टूटकर समतल होते पर्वतों और लूप्त होते प्रकृति के मनोरम दृश्यों को देखकर चिंता भी व्यक्त करती है तथा सचेत भी करती है। यथा –

"आज तुम अपने स्वार्थ के लिए
पर्वतों के पत्थर तोड़ रहे हो
बारूदी गंध से जीवन को मरोड़ रहे हो
क्या कभी नदियाँ लौट कर पूछेगी
अपने खंडहर होते पर्वतों से
कि कहाँ गया उनका उद्‌गम?
कहाँ गया उनका वैभव?
तब पर्वत रोएगा सूख जाएंगी उसकी धाराएँ।"[10]

वायु के शुद्धीकरण एवं गैसीय संतुलन बनाए रखने में पर्वतों की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मैदानी अंचलों को समूल प्रदूषित करने के पश्चात मनुष्य ने पहाड़ों की तरफ अपना रूख किया है। जिस प्रकार मैदानी अंचलों के प्राकृतिक उपादानों को विकृत कर उसने वहाँ के पर्यावरण को असंतुलित किया उसी प्रकार पहाड़ी अंचल में भी अपने उन्हीं कृत्यों को अंजाम दे रहा है। पहाड़ों की वनस्पतियों को काटकर वहाँ मैदान तथा तरणताल विकसित कर रहा है। वह पहाड़ पर शिकार करता है, वहीं आग जलाकर किए हुए शिकार को पकाता है, खाता है। फिर आग को बिना बुझाए छोड़ देता है जो बाद में

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

भड़ककर पूरे जंगल को अपने आगोश में ले लेती है। इसमें पहाड़ों के जंगल की वनस्पतियों और जीव–जंतुओं की क्षति होती है। पहाड़ों की यह दुर्दशा वैश्विक है। इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता में इसपर पर्याप्त चिंता व्यक्त की गई है। इस संदर्भ में अश्वघोष की कुछ पक्तियाँ प्रस्तुत है –

"इस वक्त कुल्हाड़ी और आग के शिकंजे में है जंगल
हरियाली भोग रही है तड़ीपार की सजा
किसी कोढ़ी की भाँति एकान्त में सिसक रहे हैं पहाड़
अजगर की तरह इठलाती सड़कें धीरे–धीरे
निगल रही हैं पहाड़ों का जिस्म।"[11]

समग्रतः हम कह सकते हैं कि विकृत होते पर्यावरणीय घटकों का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करने वाली इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता में प्राकृतिक पर्यावरण की चेतनात्मक अभिव्यक्ति हुई है। यह चेतनात्मक अभिव्यक्ति जनमानस में पर्यावरण संरक्षण का संदेश प्रसारित करती है। वर्तमान सदी के हिन्दी कवि इस बात को भली–भाँति जानते हैं कि मानवजाति का अस्तित्व पर्यावरण के सन्तुलित अस्तित्व पर निर्भर है। पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करके ही विकास के समुचित मानदण्ड गढ़े जा सकते हैं तथा मानवता के आयाम स्थापित किये जा सकते हैं। निश्चय ही इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता ने इस वैश्विक समस्या को रेखांकित कर जागृति का संदेश दिया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वर्मा, धर्मेन्द्र, (सं.), बृहद् हिन्दी शब्दकोश (खंड–2), प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष–2016, पृष्ठ संख्या–1517.
2. राठौर, विजय, इत्यादि के पहले (काव्य संग्रह), बोधि प्रकाशन, जयपुर, वर्ष–2010, पृष्ठ संख्या–68.
3. सक्सेना, नरेश, सुनो चारुशीला (काव्य संग्रह), भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, वर्ष–2012, पृष्ठ संख्या–42.
4. रंजन, सुधीर, परिकथा (अंक–13), दिल्ली, मार्च–अप्रेल 2008, पृष्ठ संख्या–91.
5. मल्होत्रा राव, लीना, मेरी यात्रा का जरूरी सामान (काव्य संग्रह), बोधि प्रकाशन, जयपुर, वर्ष–2012, पृष्ठ संख्या–82–83.
6. सक्सेना, नरेश, समुद्र पर हो रही है बारिश (काव्य संग्रह), राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, वर्ष–2001, पृष्ठ संख्या–91.
7. सक्सेना, नरेश, रेवान्त (जनवरी–दिसम्बर अंक), लखनऊ, वर्ष–2014, पृष्ठ संख्या–10.
8. राठौर, विजय, इत्यादि के पहले (काव्य संग्रह), बोधि प्रकाशन, जयपुर, वर्ष–2010, पृष्ठ संख्या–67.
9. रघुवंशी, प्रेमशंकर, पहल (अंक–89), जबलपुर, जुलाई 2018, पृष्ठ संख्या–210.
10. कुजूर, ग्रेस, समकालीन आदिवासी कविता (सं. हरिराम मीणा), अलख प्रकाशन, जयपुर, वर्ष–2013, पृष्ठ संख्या–24.
11. घोष, अश्व, सीढ़ियों पर बैठा पहाड़ (काव्य संग्रह), मेधा बुक्स, दिल्ली, वर्ष–2010, पृष्ठ संख्या 55.

*****